**[2025] 4 एस.सी.आर. 1417: 2025 आई.एन.एस.सी. 532**

**अंगादि चंद्रन्ना**

बनाम

**शंकर एवं अन्य**

(सिविल याचिका संख्या 5401/2025)

(22 अप्रैल 2025)

**[जे. बी. पारदिवाला और आर. महादेवन*, न्यायाधीश]**

## विचार के लिए मुद्दा

मुख्य विवाद इस मुकदमे में यह है कि क्या विवादित संपत्ति उत्तरवादी संख्या 1 की पैतृक (आनुवंशिक) संपत्ति थी या स्वयं अर्जित संपत्ति।

## संक्षिप्त मुक़दमा

**सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - अनुच्छेद 96, 100, 103 - उत्तरवादी संख्या 1 और उनके दो भाई CT और CE ने संयुक्त पारिवारिक संपत्तियों का विभाजन एक पंजीकृत विभाजन डिक्री दिनांक 09.05.1986 के तहत किया - इसके पश्चात्, उत्तरवादी संख्या 1 ने अपनी भाई CT से विवादित संपत्ति को पंजीकृत विक्रय डीड दिनांक 16.10.1989 के माध्यम से खरीदा - इसके बाद, उत्तरवादी संख्या 1 ने विवादित संपत्ति को उत्तरवादी संख्या 2 को पंजीकृत विक्रय डीड दिनांक 11.03.1993 के माध्यम से बेचा - वादी (उत्तरवादी संख्या 1 के पुत्र और पुत्रियाँ) ने विवादित संपत्ति के विभाजन और अलग कब्जे की मांग करते हुए मुकदमा दायर किया - परीक्षण न्यायालय ने वादियों के पक्ष में डिक्री पारित की - उत्तरवादी संख्या 2 ने नियमित अपील दायर की - प्रथम अपीलीय न्यायालय ने परीक्षण न्यायालय के निर्णय और डिक्री को**

---

*लेखक

**रद्द कर दिया - असंतुष्ट वादियों ने दूसरी नियमित अपील दायर की - उच्च न्यायालय ने प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को रद्द कर दिया - समीक्षा/सत्यापन: उच्च न्यायालय का निर्णय उचित:**

**निर्णय**: उच्च न्यायालय केवल विशेष परिस्थितियों में ही सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 103 के तहत तथ्यों के निष्कर्षों में प्रवेश कर सकता है। वर्तमान मामले में, उच्च न्यायालय द्वारा निर्मित तथाकथित "महत्वपूर्ण विधिक प्रश्न" वास्तविक में कोई महत्वपूर्ण विधिक प्रश्न नहीं है; बल्कि यह उच्च न्यायालय द्वारा प्रथम अपीलीय न्यायालय के तथ्यों के निष्कर्षों में साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन करने का प्रयास है। धारा 103 केवल तब उच्च न्यायालय को तथ्यों में प्रवेश करने की अनुमति देती है जब निचली अदालतों ने किसी महत्वपूर्ण तथ्य पर कोई निष्कर्ष नहीं दिया हो, जबकि रिकॉर्ड पर पहले से ही साक्ष्य उपलब्ध हैं, या जब किसी महत्वपूर्ण विधिक प्रश्न का निर्णय देने के बाद, विशेष मामले के तथ्य पुनः निर्धारण की मांग करते हों। जब प्रथम अपीलीय न्यायालय ने अपनी न्यायक्षमता का प्रयोग करते हुए सभी साक्ष्यों का विचार किया और निष्कर्ष निकाला, तो उच्च न्यायालय केवल इसलिए साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन नहीं कर सकता कि कोई अन्य दृष्टिकोण भी संभव है, जब प्रथम अपीलीय न्यायालय का दृष्टिकोण वैध और कानूनगत दोषरहित हो। इस प्रकार, उच्च न्यायालय ने प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय और डिक्री को रद्द करने में त्रुटि की। तथ्यों के अनुसार, वादियों ने भाइयों के बीच संपत्ति के विभाजन डीड पर कोई प्रश्न नहीं उठाया। संयुक्त पारिवारिक संपत्ति जब विधि अनुसार वितरित कर दी जाती है, तो वह संयुक्त परिवार की संपत्ति नहीं रहती और संबंधित पक्षों का हिस्सा उनकी व्यक्तिगत संपत्ति बन जाता है। अतः, उत्तरवादी संख्या 1 द्वारा खरीदी गई विवादित संपत्ति उनके व्यक्तिगत संपत्ति में शामिल होती है, क्योंकि यह उनके भाई से पंजीकृत विक्रय डीड दिनांक 16.10.1989 के माध्यम से खरीदी गई थी। वादियों ने यह सिद्ध करने के लिए कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया कि उत्तरवादी संख्या 1 को आवंटित अन्य संपत्तियों से प्राप्त आय ही केवल इस संपत्ति की खरीद के लिए प्रयोग की गई। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों तथा पहले के निर्णयों में प्रतिपादित सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय के विचार में, उत्तरवादी संख्या 1 ने विवादित संपत्ति DW3 से प्राप्त ऋण के माध्यम से अर्जित की, न कि नाभिकीय फंड या संयुक्त पारिवारिक फंड से प्राप्त आय के माध्यम से। अतः, विवादित संपत्ति उनकी व्यक्तिगत संपत्ति मानी जानी चाहिए। साथ ही, उच्च न्यायालय ने हिंदू संयुक्त परिवार कानून के अंतर्गत "ब्लेंडिंग" सिद्धांत को गलत रूप से

लागू किया, अप्रासंगिक निर्णयों पर निर्भर किया, बिना किसी महत्वपूर्ण विधिक प्रश्न का निर्माण किए साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन किया और वादियों द्वारा दायर अपील को मंजूरी दी। इस प्रकार, उच्च न्यायालय का विवादित निर्णय और आदेश रद्द किया जाता है और प्रथम अपीलीय न्यायालय का निर्णय और डिक्री बहाल की जाती है। **[धारा 12, 12.1, 18, 19, 19.2, 20 के अनुच्छेदों के अनुसार]**

**सिद्धांत/सिद्धांतगत धारणाएँ - स्वयं अर्जित संपत्ति को संयुक्त परिवार की संपत्ति के साथ मिलाने (Doctrine of Blending) पर चर्चा की गई। [अनुच्छेद 20]**

**सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 103 - चर्चा की गई [अनुच्छेद 12, 12.1]**

**उद्धृत निर्णय**

*कानूनी उत्तराधिकारी के माध्यम से चंद्रभान मृत एवं अन्य बनाम सरस्वती एवं अन्य,* **2022 आईएनएससी 997: 7 एससीआर 295: मनु/एससी/1224/2022,** *गोविंदभाई छोटेभाई पटेल एवं अन्य बनाम पटेल रमणभाई मथुरभाई,* **13 एससीआर 152: (2020) 16 एससीसी 255,** *रोहित चौहान बनाम सुरिंदर सिंह एवं अन्य,* **7 एससीआर 897: (2013) 9 एससीसी 419** – *पर निर्भर।*

*कानूनी उत्तराधिकारी के माध्यम से जयचंद (मृत) एवं अन्य बनाम सहनुलाल एवं अन्य,* **[2024] 12 एससीआर 719 : 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 3864***; कानूनी उत्तराधिकारी के माध्यम से गूर्नम सिंह (मृत) एवं अन्य बनाम कानूनी उत्तराधिकारी के माध्यम से लेहना सिंह (मृत),* **[2019] 4 एससीआर 1084 : (2019) 7 एससीसी 641***; कानूनी उत्तराधिकारी के माध्यम से मुरुगन एवं अन्य बनाम कानूनी उत्तराधिकारी के माध्यम से केसवा गौंडर (मृत) एवं अन्य,* **[2019] 4 एससीआर 357 : (2019) 20 एससीसी 633***; मल्लेसप्पा बांदेप्पा देसाई एवं अन्य बनाम देसाई मल्लप्पा उर्फ मल्लेसप्पा एवं अन्य,* **[1961] 3 एससीआर 779***; लक्किरेड्डी चिन्ना वेंकट रेड्डी एवं अन्य बनाम लक्किरेड्डी लक्ष्मम्मा,* **[1964] 2 एससीआर 172***; युधिष्ठर बनाम अशोक कुमार,* **[1987] 1 एससीआर 516 : (1987) 1 एससीसी 204***; के.वी. नारायणन बनाम के.वी. रंगनाधन एवं अन्य,* **[1976] 3 एससीआर 637 : (1977) 1 एससीसी 244** – संदर्भित।

आर. देईवनाई अम्मल (मृत) बनाम जी. मीनाक्षी अम्मल, **ए.आई.आर. 2004 मद्रास 529** – पर संदर्भित।

## अधिनियमों की सूची

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908

## कीवर्ड्स की सूची

संपत्ति; पैतृक संपत्ति; स्व-उर्जित/स्व-अर्जित संपत्ति; संयुक्त परिवार की संपत्ति; बिक्री विलेख; विभाजन विलेख; भागीदारी/विभाजन; कब्जा; महत्वपूर्ण कानूनी प्रश्न; साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन; निर्णायक तथ्य; मूल निधि से आय; संयुक्त पारिवारिक निधि; स्व-अर्जित संपत्ति के संयुक्त परिवार के साथ सम्मिश्रण का सिद्धांत।

## केस का उद्भव

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील संख्या 5401/2025

कर्नाटक उच्च न्यायालय, बेंगलुरु के आदेश और निर्णय दिनांक 12.08.2021 में आरएसए संख्या 1417/2006 से

## पक्षों के लिए उपस्थितियाँ

अपीलकर्ता के लिए अधिवक्ता :
सुश्री हरिप्रिया पद्मनाभन, वरिष्ठ अधिवक्ता, रघुनाथ सेतुपति बी, के. पारी वेंधन, सुश्री परीक्षा, श्रीहरे जे।

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:
निशांत पाटिल, आयुष पी. शाह, विघ्नेश आदित्य एस., अरिजित डे।

## माननीय सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय/आदेश

## आदेश

**आर. महादेवन, न्यायाधीश**

अनुमति प्रदान की गयी|

2. अपीलकर्ता महादेवपुरा ग्राम, परशुरामपुरा होबली, चल्लकेरे तालुक में स्थित सर्वे नं. 93 की 7 एकड़ 20 गुंटा भूमि का क्रेता है[1]। उसने कर्नाटक उच्च न्यायालय, बेंगलुरु[2] द्वारा नियमित द्वितीय अपील संख्या 1417 of 2006 में पारित दिनांक 12.08.2021 के निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध वर्तमान अपील दायर की है। विवादित आदेश द्वारा उच्च न्यायालय ने नियमित द्वितीय अपील को स्वीकार करते हुए सिविल न्यायाधीश (वरिष्ठ खंड), चल्लकेरे[3] द्वारा नियमित अपील संख्या 291 of 2002 में पारित दिनांक 21.02.2006 के निर्णय एवं डिक्री को निरस्त कर दिया तथा सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ खंड) एवं न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी, चल्लकेरे[4] द्वारा ओ.एस. संख्या 169 of 1994 में पारित दिनांक 21.12.2001 के निर्णय एवं डिक्री की पुष्टि की।

3. यहाँ अपीलकर्ता प्रतिवादी संख्या 2 है तथा प्रतिवादी संख्या 1 से 4, जो प्रतिवादी संख्या 1 (सी. जयरामप्पा) के पुत्र एवं पुत्रियाँ हैं, वादी हैं। सुविधा की दृष्टि से, पक्षकारों को उपर्युक्त वाद में उनकी स्थिति (रैंक) के अनुसार ही संदर्भित किया जा रहा है।

4. प्रतिवादी संख्या 1 तथा उसके दो भाई, अर्थात् सी. थिप्पेस्वामी और सी. ईश्वरप्पा ने, अपने पिता तथा निःसंतान चाचा की मृत्यु के पश्चात, दिनांक 09.05.1986 के एक पंजीकृत बंटवारा विलेख के माध्यम से संयुक्त परिवार की संपत्तियों का विभाजन किया। तत्पश्चात, प्रतिवादी संख्या 1 ने दिनांक 16.10.1989 के पंजीकृत बिक्री विलेख द्वारा अपने बड़े भाई सी. थिप्पेस्वामी से वाद संपत्ति क्रय की। इसके बाद, प्रतिवादी संख्या 1 ने दिनांक 11.03.1993 के पंजीकृत बिक्री विलेख के माध्यम से उक्त वाद संपत्ति प्रतिवादी संख्या 2 को विक्रय कर दी।

---

1. संक्षेप में, "वाद संपत्ति"
2. आगे इसे "उच्च न्यायालय" कहा जाएगा।
3. आगे इसे "प्रथम अपीलीय न्यायालय" कहा जाएगा।
4. आगे इसे "विचारण न्यायालय" कहा जाएगा।

5. जब स्थिति इस प्रकार थी, तब वादियों ने वाद संपत्ति के विभाजन एवं पृथक कब्जा प्राप्त करने हेतु ट्रायल कोर्ट के समक्ष ओ.एस. संख्या 169/1994 के रूप में एक वाद संस्थित किया। सम्यक विचारण के पश्चात, ट्रायल कोर्ट ने दिनांक 21.12.2001 के अपने निर्णय एवं डिक्री द्वारा वाद को याचितानुसार स्वीकार किया तथा यह घोषित किया कि वादी राजस्व अधिकारियों के माध्यम से नाप-जोख द्वारा विभाजन एवं पृथक कब्जा प्राप्त करने के हकदार हैं।

6. अपीलकर्ता / प्रतिवादी संख्या 2 की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने प्रारंभ में यह दलील दी कि उच्च न्यायालय द्वारा निर्णय हेतु जो विधि का प्रश्न निर्धारित किया गया है, वह वस्तुतः शुद्ध तथ्य का प्रश्न है, जिसे सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अंतर्गत अधिकार-क्षेत्र का प्रयोग करते हुए न तो निर्धारित किया जा सकता है और न ही उसका निर्णय किया जा सकता है। इस संदर्भ में, इस न्यायालय के निर्णयों– जयचंद (मृत) कानूनी उत्तराधिकारियों के माध्यम से एवं अन्य बनाम सहनुलाल एवं अन्य5 तथा गुरनाम सिंह (मृत) कानूनी उत्तराधिकारियों के माध्यम से एवं अन्य बनाम लेहना सिंह (मृत) कानूनी उत्तराधिकारियों के माध्यम से6–पर भरोसा किया गया।

---

5. 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 3864

6. (2019) 7 एससीसी 641

6.1 विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, संयुक्त परिवार की संपत्ति का वर्ष 1986 में विभाजन हो चुका था। तत्पश्चात, भाइयों में से एक, तिप्पेस्वामी ने अपने हिस्से अर्थात् वाद संपत्ति को दिनांक 16.10.1989 के पंजीकृत विक्रय विलेख के माध्यम से प्रतिवादी क्रमांक 1 के पक्ष में विक्रय कर दिया। इसके पश्चात, प्रतिवादी क्रमांक 1 ने दिनांक 11.03.1993 के पंजीकृत विक्रय विलेख द्वारा उक्त वाद संपत्ति को प्रतिवादी क्रमांक 2 के पक्ष में विक्रय कर दिया। प्रतिवादी क्रमांक 2 द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों से यह स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है कि वाद संपत्ति प्रतिवादी क्रमांक 1 द्वारा अपने स्वयं के धन तथा डी.डब्ल्यू.3 नरसिंहमूर्ति से प्राप्त ऋण के माध्यम से क्रय की गई थी। अतः, उक्त संपत्ति को प्रतिवादी क्रमांक 1 की स्व-अर्जित संपत्ति माना जाना चाहिए। इस प्रकार, विक्रय के समय वाद संपत्ति संयुक्त परिवार की संपत्ति का हिस्सा नहीं रही थी। उपर्युक्त तथ्यों पर

विचार करते हुए, प्रथम अपीलीय न्यायालय ने सही रूप से यह निष्कर्ष निकाला कि वाद संपत्ति प्रतिवादी क्रमांक 1 की स्व-अर्जित संपत्ति थी।

6.2 यह आगे प्रस्तुत किया गया कि दिनांक 11.03.1993 की वाद संपत्ति संबंधी विक्रय विलेख, जो प्रतिवादी क्रमांक 1 द्वारा प्रतिवादी क्रमांक 2 के पक्ष में निष्पादित की गई थी, के बाद प्रतिवादी क्रमांक 1 के पुत्र एवं पुत्रियों, जो वादी हैं, ने विभाजन एवं पृथक कब्जे के लिए वाद दायर किया, परंतु उक्त विक्रय विलेख को निरस्त कराने की राहत नहीं मांगी। यद्यपि विचारण न्यायालय ने इस संबंध में एक मुद्दा निर्धारित किया, उसने यह निर्णय दिया कि यह मुद्दा विचारण के लिए उत्पन्न ही नहीं होता, क्योंकि विभाजन संबंधी वाद में तृतीय पक्षों के पक्ष में निष्पादित विक्रय विलेखों को शून्य एवं अवैध घोषित करने की घोषणा संबंधी राहत मांगने की कोई आवश्यकता नहीं है। इस संबंध में, अधिवक्ता महोदय ने इस न्यायालय के निर्णय मुरुगन एवं अन्य बनाम केसव गौंडर (मृत) कानूनी उत्तरधिकारी के माध्यम से एवं अन्य.7 का उल्लेख किया, जिसमें यह कहा गया था कि वाद में घोषणा एवं पृथक कब्जे की राहत के लिए विक्रय विलेख को रद्द कराने हेतु विशिष्ट प्रार्थना करना अनिवार्य है।

6.3 यह भी प्रस्तुत किया गया कि उच्च न्यायालय ने इस निष्कर्ष पर पहुँचने में त्रुटि की कि प्रतिवादी क्रमांक 1 को वाद संपत्ति दिनांक 18.12.1978 की वसीयत के तहत प्राप्त हुई और उसी समय से वह संयुक्त पारिवारिक संपत्तियों में मिश्रित (ब्लेंड) हो गई। जबकि, विभाजन विलेख के तहत प्रतिवादी क्रमांक 1 को जो संपत्ति प्राप्त हुई, वह वाद संपत्ति से भिन्न थी और वाद संपत्ति को उसने अपने स्वयं के धन तथा डी.डब्ल्यू.3 नरसिम्हमूर्ति से प्राप्त ऋण से खरीदा था। अतः, 'ब्लेंडिंग' के सिद्धांत का वर्तमान मामले में कोई अनुप्रयोग नहीं होता। इस संबंध में विधिक स्थिति यह है कि स्व-अर्जित संपत्ति को संयुक्त परिवार की संपत्ति के कोष में ब्लेंड करने का सिद्धांत तभी लागू होता है, जब ऐसी स्व-अर्जित संपत्ति को स्वेच्छा से साझा कोष में इस आशय से डाला जाए कि उस पर अलग स्वामित्व के दावे का परित्याग किया जा रहा है [देखें: मल्लेसप्पा बांदेप्पा देसाई एवं अन्य बनाम देसाई मल्लप्पा उर्फ मल्लेसप्पा एवं अन्य,8 तथा लक्किरेड्डी चिन्णा वेंकट रेड्डी एवं अन्य बनाम लक्किरेड्डी लक्ष्मम्मा9]।

_____

7. (2019) 20 एससीसी 633
8. [1961] 3 एससीआर 779
9. [1964] 2 एससीआर 172

6.4 ऐसा कहते हुए, विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना की कि उच्च न्यायालय द्वारा पारित विवादित निर्णय एवं आदेश को निरस्त करते हुए इस अपील को स्वीकृत किया जाए।

7. इसके विपरीत, प्रतिवादीगण / वादियों के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि वाद संपत्ति प्रतिवादी क्रमांक 1 द्वारा दिनांक 16.10.1989 के विक्रय विलेख के माध्यम से सी. तिप्पेस्वामी से कुल प्रतिफल 15,000/- रुपये में प्राप्त की गई, जिसमें न्यूक्लियस फंड या संयुक्त परिवार के धन का उपयोग किया गया अर्थात् विभाजन के माध्यम से प्रतिवादी क्रमांक 1 के हिस्से में आवंटित भूमि से प्राप्त आय; कुली कार्य करने से प्राप्त आय; विभाजन के दौरान दिए गए 10,000/- रुपये नकद; तथा प्रतिवादीगण की दादी मल्लम्मा द्वारा रायदुर्गा में अपनी संपत्ति बेचकर दिए गए नकद धन, अतः इसे पैतृक संपत्ति माना जाना चाहिए न कि स्व-अर्जित संपत्ति।

7.1 यह आगे प्रस्तुत किया गया कि जब प्रतिवादी क्रमांक 1 एवं उसके भाइयों के बीच विभाजन प्रभावी हुआ अर्थात् 09.05.1986 को, तब वादी नाबालिग थे तथा विभाजित एवं प्रतिवादी क्रमांक 1 के हिस्से में आवंटित संपत्तियों या राशियों के संबंध में सह-हिस्सेदार थे, क्योंकि परिवार संयुक्त रूप से निवास करता रहा। इस प्रकार, वादियों को वाद संपत्ति पर अधिकार है।

7.2 इसके विपरीत, प्रतिवादीगण / वादियों के विद्वान अधिवक्ता ने मुल्ला के हिंदू विधि का उल्लेख करते हुए प्रस्तुत किया कि पैतृक संपत्ति का स्वरूप पुत्रों के संबंध में विभाजन के बाद भी नहीं बदलता, क्योंकि विधि का निश्चित सिद्धांत है कि सह-धारक को पैतृक संपत्ति के विभाजन पर प्राप्त होने वाला हिस्सा उसके पुरुष संतानों के लिए पैतृक ही बना रहता है, जो जन्म से ही उसमें हित प्राप्त कर लेते हैं, चाहे वे विभाजन के समय विद्यमान हों या उसके पश्चात् जन्म लें। अतः, प्रतिवादी क्रमांक 1 द्वारा

अर्जित/क्रय की गई वाद संपत्ति पैतृक संपत्ति बनी रहती है तथा वादियों को उस पर अधिकार है। इस संबंध में, विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय के निर्णय युधिष्ठिर बनाम अशोक कुमार10 पर निर्भरता प्रकट की।

7.3 यह भी प्रस्तुत किया गया कि यह मान लिया जाए (परंतु स्वीकार न किया जाए) कि संयुक्त पारिवारिक संपत्ति एक बार विभाजन द्वारा विभाजित हो जाने पर अब वैसी ही नहीं रहती तथा स्व-अर्जित मानी जाती है, तो भी न्यायालय को तथ्यों एवं साक्ष्यों की जांच करनी चाहिए कि प्रतिवादी क्रमांक 1 ने 1989 में 15,000/- रुपये की वाद संपत्ति न्यूक्लियस फंड/संयुक्त पारिवारिक फंड का उपयोग करके या डी.डब्ल्यू.3 से प्राप्त ऋण से कैसे अर्जित की। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, मात्र तीन वर्ष की अवधि में प्रतिवादी क्रमांक 1 के लिए कुली कार्य करने या विभाजन द्वारा आवंटित भूमि की खेती करके अकेले 15,000/- रुपये संचित करने तथा वाद संपत्ति अर्जित करने का कोई उचित संभव नहीं था। इसके अतिरिक्त, यह सिद्ध करने हेतु कि प्रतिवादी क्रमांक 1 ने डी.डब्ल्यू.3 से ऋण लिया, कोई विश्वसनीय एवं सुसंगत सामग्री प्रस्तुत नहीं की गई। वह अलग बात है कि प्रतिवादियों के पक्ष के साक्ष्य में विरोधाभास एवं असंगतियां विद्यमान हैं जो यह संकेत देती हैं कि वाद संपत्ति संयुक्त पारिवारिक फंड का उपयोग करके अर्जित की गई। दूसरी ओर, वादियों ने संयुक्त पारिवारिक फंड का उपयोग करके वाद संपत्ति अर्जित होने को स्थापित करने हेतु पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत कर अपना भार सफलतापूर्वक वहन कर लिया है, तथा वाद संपत्ति का स्वरूप अभी भी पैतृक ही माना जाना चाहिए।

7.4 अंततः, विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि ऐसा कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है जिससे यह सिद्ध हो सके कि वाद संपत्ति को संपत्ति के हित में बेचा गया था। इसके विपरीत, उपलब्ध सामग्री से यह स्पष्ट होता है कि प्रतिवादी क्रमांक 1 को अपनी बुरी आदतों को जारी रखने के लिए धन की अत्यधिक आवश्यकता थी और वह संपत्ति की देखरेख के लिए धन की आवश्यकता में नहीं था। इसके अतिरिक्त, वाद संपत्ति को

---

10. (1987) 1 एससीसी204

बेचकर प्रतिवादी क्रमांक 1 द्वारा प्राप्त की गई राशि कभी भी वादियों के कल्याण हेतु उन्हें प्रदान नहीं की गई। अतः यह प्रस्तुत किया जाता है कि वाद संपत्ति को वादियों की सहमति के बिना तथा किसी भी वैधानिक आवश्यकता के अभाव में बेचा गया, जिससे उक्त विक्रय विलेख शून्य है।

7.5 उपरोक्त तथ्यों की ओर संकेत करते हुए, विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि इन सभी पहलुओं पर विचार करते हुए, विचारण न्यायालय एवं उच्च न्यायालय दोनों ने वादियों के पक्ष में वाद को उचित रूप से डिक्री किया है तथा उनमें इस न्यायालय द्वारा किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

8. हमने दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया है।

9. तथ्यों से स्पष्ट है कि दिनांक 09.05.1986 को प्रतिवादी क्रमांक 1 तथा उसके दो भाइयों के मध्य पैतृक संपत्तियों के संबंध में, उनके पिता चन्नप्पा की मृत्यु के पश्चात एक विभाजन विलेख संपादित हुआ। चन्नप्पा की दो पत्नियाँ थीं तथा उनसे तीन पुत्र थे। 'A' अनुसूची संपत्ति प्रथम पत्नी मल्लम्मा से उत्पन्न पुत्र C. तिप्पेस्वामी को आवंटित की गई; 'B' अनुसूची संपत्ति द्वितीय पत्नी पार्वथम्मा से उत्पन्न पुत्र C. ईश्वरप्पा को आवंटित की गई; 'C' अनुसूची संपत्ति द्वितीय पत्नी पार्वथम्मा से उत्पन्न अन्य पुत्र अर्थात प्रतिवादी क्रमांक 1 को आवंटित की गई; तथा 'D' अनुसूची संपत्ति प्रतिवादी क्रमांक 1 एवं उसके भाइयों के मध्य समान भागों में विभाजित की गई। तत्पश्चात, प्रतिवादी क्रमांक 1 ने दिनांक 16.10.1989 को पंजीकृत विक्रय विलेख द्वारा ₹15,000/- के प्रतिफल पर, दिनांक 09.05.1986 के विभाजन विलेख के अंतर्गत C. तिप्पेस्वामी के हिस्से में आई संपत्ति (A-अनुसूची संपत्ति) अर्थात वाद संपत्ति को क्रय किया। इसके बाद, प्रतिवादी क्रमांक 1 ने उक्त वाद संपत्ति को दिनांक 11.03.1993 को ₹20,000/- के विक्रय प्रतिफल पर प्रतिवादी क्रमांक 2 के पक्ष में विक्रय कर दिया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि वाद संपत्ति वह संपत्ति है जो मूलतः C. तिप्पेस्वामी को आवंटित की गई थी और बाद में प्रतिवादी क्रमांक 1 द्वारा क्रय की गई थी, न कि वह संपत्ति जो प्रतिवादी क्रमांक 1 को किसी वसीयत के माध्यम से प्राप्त हुई थी।

10. यह दावा करते हुए कि मुकदमे की संपत्ति का आरोपी संख्या 1 ने संयुक्त पारिवारिक निधियों का उपयोग करके अधिग्रहण किया था और इसलिए इसे पैतृक माना जाना चाहिए; वह

वादियों की सहमति के बिना इसे बेच नहीं सकता; तथा वादी संख्या 1 और 3, संयुक्त परिवार के सहदायिक होने के नाते, मुकदमे की संपत्ति में अपना हिस्सा रखते हैं, जबकि वादी संख्या 2 और 4 को इससे भरण-पोषण का अधिकार है, वादियों ने विभाजन एवं अलग कब्जे के लिए ओ.एस. संख्या 169/1994 के मुकदमे की शुरुआत की। बचाव यह था कि मुकदमे की संपत्ति आरोपी संख्या 1 की स्व-अर्जित संपत्ति थी और इसलिए आरोपी संख्या 1 को इसे आरोपी संख्या 2 को बेचने का अधिकार था। ट्रायल कोर्ट के समक्ष, वादियों की ओर से पीडब्ल्यू1 से पीडब्ल्यू3 का परीक्षण किया गया तथा एक्स.पी1 से एक्स.पी3 चिह्नित किए गए; तथा प्रतिवादियों की ओर से डीडब्ल्यू1 से डीडब्ल्यू4 का परीक्षण किया गया तथा एक्स.डी1 से एक्स.डी10 दस्तावेज चिह्नित किए गए। इन्हें विश्लेषित करने पर, ट्रायल कोर्ट ने वादियों के पक्ष में डिक्री पारित की, जिसे प्रथम अपीलीय कोर्ट ने उलट दिया। हालांकि, हाई कोर्ट ने प्रथम अपीलीय कोर्ट के निर्णय को रद्द कर ट्रायल कोर्ट के निर्णय को बहाल कर दिया। इसलिए, अपीलीय पक्षकार / आरोपी संख्या 2 द्वारा यह अपील दायर की गई।

11. वादियों और प्रतिवादियों द्वारा प्रस्तुत अभिवादनों एवं तर्कों के आधार पर, विवाद का मुख्य बिंदु यह है कि मुकदमे की संपत्ति पैतृक थी या आरोपी संख्या 1 की स्व-अर्जित संपत्ति।

12. प्रकरण के तथ्यों में प्रवेश करने से पूर्व, इस न्यायालय ने जयचंद (उपर्युक्त) में उच्च न्यायालय द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के दायरे को न समझ पाने पर अपनी नाराज़गी व्यक्त की, जो हस्तक्षेप को केवल उन्हीं मामलों तक सीमित करती है जहाँ विधि का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न विद्यमान हो। साथ ही, यह स्पष्ट किया गया कि उच्च न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 103 के अंतर्गत तथ्यों के निष्कर्षों में केवल कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में ही हस्तक्षेप कर सकता है, जैसा कि निम्नलिखित अनुच्छेदों में उल्लेखित है:

> *"23. हम हाई कोर्ट द्वारा जिस प्रकार से तथाकथित पर्याप्त विधिक प्रश्न को तैयार किया गया है, उससे पूर्णतः निराश हैं। किसी भी कल्पना के अनुसार, इसे विधिक प्रश्न तक नहीं कहा जा सकता, दूर-दूर तक पर्याप्त विधिक प्रश्न होने से तो रहा। शीर्ष न्यायालय को विधि प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील के दायरे तथा पर्याप्त विधिक प्रश्न को किस प्रकार तैयार किया जाना चाहिए, इसके बारे में कितनी बार समझाना पड़ता है? हम एक बार पुनः विधि प्रक्रिया संहिता की धारा 100*

*के अधीन द्वितीय अपील के दायरे को नियंत्रित करने वाले सुसिद्ध सिद्धांतों की व्याख्या करते हैं।*

*24. नवनीतम्मल बनाम अर्जुन चेट्टी, मनु/एससी/2077/1996: 1998 आईएनएससी 349: एआईआर 1996 एस. सी 3521 में इस न्यायालय ने निर्णय दिया कि उच्च न्यायालय को प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा किए गए तथ्यात्मक निष्कर्षों को रद्द करने हेतु केवल साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करके किसी अन्य संभावित दृष्टिकोण तक नहीं पहुँचना चाहिए।*

*25. क्षितीश चंद्र पुरकैत v. संतोष कुमार पुरकैत, मनु/एससी/0647/1997 : 1997: आईएनएससी: 487 : (1997) 5 एस.सी.सी. 438 में इस न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि दूसरी अपील में उच्च न्यायालय को यह संतोष होना चाहिए कि प्रकरण में केवल साधारण विधिक प्रश्न नहीं बल्कि महत्वपूर्ण विधिक प्रश्न निहित है।*

*26. ज्ञानोबा भाऊराव शेमड़े बनाम मारोती भाऊराव मरनोर, मनु/एससी/0058/1999: 1999(2) एस.सी.सी. 471 में, इस न्यायालय ने माना:*

*1976 में किए गए संशोधन को ध्यान में रखते हुए, उच्च न्यायालय केवल* ***धारा 100,*** *सिविल* ***प्रक्रिया संहिता*** *के अंतर्गत अपनी क्षेत्राधिकार का प्रयोग केवल* ***महत्वपूर्ण विधिक प्रश्नों*** *के आधार पर कर सकता है, जो दूसरी अपील के प्रवेश के समय निर्धारित किए जाने चाहिए। और दूसरी अपील केवल ऐसे* ***उचित रूप से निर्धारित महत्वपूर्ण विधिक प्रश्नों*** *के आधार पर सुनी और निर्णीत की जानी चाहिए। उच्च न्यायालय द्वारा धारा 100, सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत ऐसा निर्णय, यदि उपरोक्त प्रक्रिया का पालन किए बिना दिया गया हो, तो उसे बनाए नहीं रखा जा सकता।*

*27. कोण्डीरा दगाडू कदम बनाम सावित्रीबाई सोपान गुज्जर, मनु/एससी/0278/1999: 1999 आईएनएससी 192: एआइआर 1999 एस.सी. 2213 में इस न्यायालय ने निर्धारित किया:*

*उच्च न्यायालय प्रथम अपीलीय न्यायालय के मत के स्थान पर अपना मत प्रतिस्थापित नहीं कर सकता, जब तक कि यह न पाया जाए कि निचली अपीलीय न्यायालय द्वारा*

*प्राप्त निष्कर्ष विधि के अनिवार्य प्रावधानों के विपरीत भ्रांत थे या शीर्ष न्यायालय के घोषणापत्रों के आधार पर इसकी निश्चित स्थिति के विपरीत थे, या स्वीकार्य न साक्ष्य पर आधारित थे या साक्ष्य के बिना प्राप्त किए गए थे।*

*28. यह इस प्रकार स्पष्ट है कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन, उच्च न्यायालय प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा दिए गए तथ्यात्मक निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता, जो कि तथ्यों का अंतिम न्यायालय होता है, सिवाय उन मामलों के जहाँ ऐसे निष्कर्ष कानून के अनिवार्य प्रावधानों के विपरीत होने के कारण त्रुटिपूर्ण हों, या सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के आधार पर स्थापित विधिक स्थिति के विरुद्ध हों, या अवैध/अस्वीकार्य साक्ष्य पर आधारित हों या बिना किसी साक्ष्य के दिए गए हों।*

*29. द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय प्रक्रिया के अनुसार ट्रायल कोर्ट के निष्कर्षों में हस्तक्षेप कर सकता है, यदि ट्रायल कोर्ट तथा प्रथम अपीलीय कोर्ट, जैसा भी मामला हो, की ओर से दस्तावेजों का उचित विश्लेषण न करने या इस न्यायालय के निर्णयों का पालन न करने तथा साक्ष्य से समर्थित न होने वाले अनुमान पर कार्य करने में विफलता पाई जाती है। दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 103 के अधीन, उच्च न्यायालय को तथ्यगत मुद्दे निर्धारित करने की शक्ति प्राप्त है। यह धारा निम्नलिखित रूप में व्यवस्था करती है:*

***उच्च न्यायालय को तथ्यगत मुद्दा निर्धारित करने की शक्ति:*** *द्वितीय अपील में, यदि अभिलेखागार पर उपलब्ध साक्ष्य अपील के निपटारे के लिए किसी आवश्यक मुद्दे को निर्धारित करने के लिए पर्याप्त हो, तो उच्च न्यायालय निम्नलिखित कर सकता है: (क) जो मुद्दा निचली अपीलीय न्यायालय द्वारा या प्रथम दृष्टया न्यायालय तथा निचली अपीलीय न्यायालय दोनों द्वारा निर्धारित नहीं किया गया हो, या (ख) जो मुद्दा ऐसे न्यायालय या न्यायालयों द्वारा गलत रूप से निर्धारित किया गया हो, धारा 100 में उल्लिखित विधिक प्रश्न पर निर्णय के कारण।*

*30. भगवान शर्मा बनाम बानी घोष, मनु /एससी/0094/1993: एआइआर 1993 एस.सी. 398 में, इस न्यायालय ने फैसला दिया:*

*उच्च न्यायालय को निश्चित रूप से यह जांचने का अधिकार था कि क्या प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा दर्ज तथ्यात्मक निष्कर्ष, जो तथ्यों का अंतिम न्यायालय था, विधि की दृष्टि में महत्वपूर्ण स्वीकार्य साक्ष्य पर विचार न करने के कारण दोषपूर्ण थे। लेकिन, उस आधार पर तथ्यात्मक निष्कर्षों को रद्द करने के बाद, न्यायालय को या तो मामले को प्रथम अपीलीय न्यायालय को पुनः सुनवाई के लिए प्रेषित करना पड़ता, जिसमें अभिलेखों पर उपलब्ध समस्त प्रासंगिक साक्ष्य पर विचार करते हुए विधि के अनुसार निर्णय लिया जाए, या वैकल्पिक रूप से धारा 103(ख) के प्रावधानों के अनुसार मामले का अंतिम निर्णय लेना पड़ता। ..... यदि किसी उपयुक्त मामले में उच्च न्यायालय दूसरे विकल्प को अपनाने का निर्णय लेता है, तो उसे विवादित मुद्दे से संबंधित अभिलेखों पर उपलब्ध समस्त साक्ष्य के संदर्भ में पक्षकारों को पूर्णतः सुनना चाहिए और यह तभी संभव है जब तथ्यों की सुनवाई के लिए उचित कागज-पुस्तिका तैयार की जाए और पक्षकारों को नोटिस दिया जाए। निचली अदालत द्वारा तथ्यात्मक निष्कर्ष विधि की दृष्टि में दोषपूर्ण होने के दावे का समर्थन करने वाले आधार स्वयं यह निष्कर्ष नहीं निकालते कि विवादित मुद्दे पर विपरीत निष्कर्ष अंततः प्राप्त किया जाना चाहिए। समस्त साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने पर अंतिम निष्कर्ष किसी भी पक्ष के पक्ष में जा सकता है और इसे पूर्वानुमानित नहीं किया जा सकता।*

*31. हीरो विनोथ बनाम सेशम्मल, मनु /एससी/2774/2006: 2006 आइएनएससी 305: (2006) 5 एससीसी 545 मामले में इस न्यायालय ने इस अवधारणा की निम्नलिखित शब्दों में व्याख्या की:*

*यह परखा जाना चाहिए कि क्या प्रश्न सामान्य सार्वजनिक महत्व का है या क्या यह पक्षकारों के अधिकारों को प्रत्यक्ष एवं पर्याप्त रूप से प्रभावित करता है।*

*या क्या यह अंततः तय नहीं हुआ है, या कठिनाई से मुक्त नहीं है या वैकल्पिक दृष्टिकोणों पर चर्चा की मांग करता है।*

*यदि प्रश्न सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निपटा जा चुका है या प्रश्न निर्धारित करने के लिए लागू सामान्य सिद्धांत अच्छी तरह स्थापित हैं और केवल उन सिद्धांतों को लागू करने*

*का प्रश्न मात्र है या उठाया गया दावा स्पष्टतः असंगत है तो वह पर्याप्त विधिक प्रश्न नहीं होगा।*

*32. उच्च न्यायालयों को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों से परिचित न होने की बात नहीं है। यह केवल न्यायालयों की ओर से मामले के तथ्यों पर विधि के सही सिद्धांतों को लागू करने में लापरवाह एवं उदासीन दृष्टिकोण ही है जो वर्तमान मामले के समान असुरक्षित आदेश पारित होने का कारण बनता है।"*

12.1 वर्तमान मामले में, हमारे विचार से, उच्च न्यायालय द्वारा तैयार किया गया तथाकथित पर्याप्त विधिक प्रश्न पर्याप्त विधिक प्रश्न होने की योग्यता नहीं रखता, बल्कि उच्च न्यायालय का कार्य प्रथम अपीलीय न्यायालय के निष्कर्षों में साक्ष्य के पुनर्मूल्यांकन द्वारा हस्तक्षेप करना है। यह सुस्थापित विधि है कि उच्च न्यायालय तथ्यों के निष्कर्षों में प्रवेश कर सकता है केवल यदि प्रथम अपीलीय न्यायालय ने विधि या साक्ष्य पर ध्यान न दिया हो या अस्वीकार्य साक्ष्य पर विचार किया हो या बिना साक्ष्य के। धारा 103 उच्च न्यायालय को तथ्यों में प्रवेश करने की अनुमति देती है केवल तब जब निचली अदालतों ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य होने के बावजूद किसी महत्वपूर्ण तथ्य पर निर्धारण न किया हो या पर्याप्त विधिक प्रश्न पर निर्णय के बाद मामले के तथ्य पुनर्निर्धारण की मांग करें। धारा 103 के दूसरे भाग को लागू करने के लिए, सबसे पहले पर्याप्त विधिक प्रश्न पर निर्णय होना चाहिए, जिस पर तथ्यों को लागू करके विवादित मुद्दे का निर्धारण किया जाए। जब प्रथम अपीलीय न्यायालय ने अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए समस्त साक्ष्य पर विचार किया हो और निष्कर्ष दिया हो, तो उच्च न्यायालय केवल इसलिए साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन नहीं कर सकता क्योंकि दूसरा दृष्टिकोण संभव हो, जब प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण विश्वसनीय हो और विधि में किसी दोष से ग्रस्त न हो। जब उच्च न्यायालय का निर्धारण केवल विद्यमान साक्ष्य के पुनर्मूल्यांकन द्वारा हो, बिना किसी विधिक प्रश्न के उत्तर दिए जाने के, तो यह स्वाभाविक है कि विधिक प्रश्न भी शामिल नहीं है, उन्हें पर्याप्त विधिक प्रश्न तो दूर की बात है। चंद्रभान (मृतक) उनके विधिक प्रतिनिधियों एवं अन्य बनाम सरस्वती एवं अन्य11 के मामले में इस न्यायालय के एक अन्य निर्णय का उल्लेख उपयोगी होगा, जिसमें निम्नलिखित रूप में कहा

---

11. 2022आइएनएससी997:मनु/एससी/1224/2022

गया था:

*33. सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 से संबंधित सिद्धांत, जो इस मामले के लिए प्रासंगिक हैं, इस प्रकार संक्षेपित किए जा सकते हैं:*

*(क) दस्तावेज के उल्लेखों या सामग्री से तथ्य का अनुमान एक तथ्यात्मक प्रश्न है। किंतु दस्तावेज की शब्दावली का विधिक प्रभाव एक विधिक प्रश्न है। दस्तावेज का निर्माण जिसमें किसी विधि सिद्धांत का अनुप्रयोग शामिल हो, वह भी विधिक प्रश्न है। इसलिए, जब दस्तावेज का गलत निर्माण हो या दस्तावेज के निर्माण में विधि के सिद्धांत का गलत अनुप्रयोग हो, तो यह विधिक प्रश्न उत्पन्न करता है।*

*(ख) उच्च न्यायालय को संतुष्ट होना चाहिए कि मामला पर्याप्त विधिक प्रश्न शामिल करता है, न कि केवल एक विधिक प्रश्न। यदि कोई विधिक प्रश्न मामले के निर्णय पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालता हो (अर्थात् ऐसा प्रश्न जिसके उत्तर से मुकदमे के पक्षकारों के अधिकार प्रभावित होते हों), तो वह पर्याप्त विधिक प्रश्न होगा, यदि वह किसी विधि के विशिष्ट प्रावधान या बाध्यकारी नजीरों से उभरने वाले स्थापित विधिक सिद्धांत से आच्छादित न हो और एक विवादास्पद विधिक मुद्दा शामिल हो। पर्याप्त विधिक प्रश्न विपरीत स्थिति में भी उत्पन्न होगा, जहाँ विधिक स्थिति स्पष्ट हो, विधि के स्पष्ट प्रावधानों या बाध्यकारी नजीरों के कारण, किंतु निचली अदालत ने मामले का निर्णय लिया हो, ऐसे विधिक सिद्धांत को नजरअंदाज करके या उसके विरुद्ध कार्य करके। दूसरे प्रकार के मामलों में, पर्याप्त विधिक प्रश्न इसलिए उत्पन्न होता है क्योंकि विधि अभी विवादास्पद नहीं है, अपितु महत्वपूर्ण प्रश्न पर दिया गया निर्णय स्थापित विधिक स्थिति का उल्लंघन करता है।*

*(ग) सामान्य नियम यह है कि उच्च न्यायालय निचली अदालतों द्वारा प्राप्त तथ्यात्मक निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं करेगा। किंतु यह पूर्णतः निरपेक्ष नियम नहीं है। कुछ सुविख्यात अपवाद हैं जहाँ (i) निचली अदालतों ने महत्वपूर्ण साक्ष्य की उपेक्षा की हो या बिना साक्ष्य के कार्य किया हो; (ii) अदालतों ने सिद्ध तथ्यों से विधि का गलत अनुप्रयोग करके गलत अनुमान निकाले हों; या (iii) अदालतों ने प्रमाण का बोझ गलत*

*रूप से डाला हो। जब हम "बिना साक्ष्य पर आधारित निर्णय" का उल्लेख करते हैं, तो यह न केवल उन मामलों को संदर्भित करता है जहाँ साक्ष्य की पूर्ण कमी हो, अपितु किसी भी मामले को, जहाँ साक्ष्य को समग्र रूप से लिया जाए तो वह निष्कर्ष का उचित समर्थन करने में असमर्थ हो।*

*34. इस मामले में यह नहीं कहा जा सकता कि प्रथम अपीलीय न्यायालय ने बिना साक्ष्य के कार्य किया। प्रतिवादी पक्षकारों ने उच्च न्यायालय के समक्ष द्वितीय अपील में प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा उपेक्षित किसी भी महत्वपूर्ण साक्ष्य का उल्लेख नहीं किया। प्रतिवादी पक्षकार यह भी प्रदर्शित नहीं कर सके कि प्रथम अपीलीय न्यायालय ने सिद्ध तथ्यों से विधि का गलत अनुप्रयोग करके कोई गलत अनुमान निकाला हो।*

*35. इस मामले में, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, मूल वादी तथा प्रतिवादियों दोनों की ओर से साक्ष्य प्रस्तुत किया गया था। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने साक्ष्य का सावधानीपूर्वक विश्लेषण किया तथा वास्तव में पाया कि ट्रायल कोर्ट ने साक्ष्य के विश्लेषण में त्रुटि की तथा असंगतियों एवं विसंगतियों को अनुचित महत्व दिया, जो वास्तव में महत्वपूर्ण नहीं थीं, दत्तक ग्रहण की तिथि से व्यतीत 34 वर्षों के समय अंतराल की उपेक्षा करते हुए। प्रथम अपीलीय न्यायालय के तर्कों में ऐसी कोई कमजोरी नहीं थी जिसके कारण हस्तक्षेप की आवश्यकता हो।*

*36. अपील का अधिकार स्वतः प्राप्त नहीं होता। अपील का अधिकार विधिनिर्माण द्वारा प्रदत्त होता है। जब विधिनिर्माण द्वारा पर्याप्त विधिक प्रश्नों वाले मामलों तक सीमित अपील का सीमित अधिकार प्रदत्त किया गया हो, तो इस न्यायालय के लिए प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा प्राप्त तथ्यात्मक निष्कर्षों पर अपीलीय रूप से बैठना उचित नहीं है।*

12.2 वर्तमान मामले में, प्रथम अपीलीय न्यायालय ने दोनों पक्षों द्वारा प्रस्तुत समस्त मौखिक साक्ष्य तथा किसी भी पक्ष द्वारा निर्भर दस्तावेजी साक्ष्य का विश्लेषण किया तथा मुकदमे को खारिज कर दिया। साक्ष्य का पुनर्विचार करने का अधिकार धारा 96 के अधीन केवल प्रथम अपीलीय न्यायालय को उपलब्ध है न कि धारा 100 के अधीन उच्च न्यायालय को, जब तक कि मामला धारा 103 के अधीन प्रदत्त अपवादात्मक परिस्थितियों में न आता हो। इस प्रकार,

समस्त साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन, जिसमें प्रदर्शनों की सामग्री, किसी अन्य संपत्ति पर निर्भरता एवं उसके गलत पहचान तथा उसे वास्तव में विवादित मुकदमे की संपत्ति मानना शामिल हो, बिना किसी पर्याप्त विधिक प्रश्न के दूसरे दृष्टिकोण को निर्धारित करना, केवल उच्च न्यायालय द्वारा सुस्थापित सिद्धांतों को लागू करने में उदासीनता को दर्शाता है। इसलिए, उच्च न्यायालय ने प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय एवं डिक्री को रद्द करने में त्रुटि की।

13. इसके अतिरिक्त, यह सुस्थापित विधिक सिद्धांत है कि संयुक्त हिंदू परिवार के अस्तित्व के आधार पर ही संपत्ति को संयुक्त पारिवारिक संपत्ति मानने का कोई अनुमान नहीं होता। जो व्यक्ति दावा करता है उसे सिद्ध करना होता है कि संपत्ति संयुक्त पारिवारिक संपत्ति है। हालांकि, यदि ऐसा दावा करने वाला व्यक्ति सिद्ध कर दे कि संयुक्त पारिवारिक संपत्ति अधिग्रहण करने हेतु न्यूक्लियस उपलब्ध था, तो संपत्ति को संयुक्त मानने का अनुमान उत्पन्न होगा तथा बोझ उस व्यक्ति पर स्थानांतरित हो जाएगा जो इसे स्व-अर्जित संपत्ति मानने का दावा करता है, उसे सिद्ध करने का कि उसने अपनी अपनी निधियों से संपत्ति खरीदी तथा संयुक्त पारिवारिक न्यूक्लियस से नहीं जो उपलब्ध था। इसके अलावा, 'न्यूक्लियस' शब्द पर विचार करते समय हमेशा यह ध्यान रखना चाहिए कि ऐसा न्यूक्लियस तथ्य के रूप में स्थापित होना चाहिए तथा संभावनाओं के आधार पर सामान्यतः इसके अस्तित्व का अनुमान या धारणा नहीं की जा सकती। इस न्यायालय ने आर. देवनाई अम्मल (मृतका) बनाम जी. मीनाक्षी अम्मल12 में हिंदू विधि, पैतृक संपत्ति तथा उसमें विद्यमान न्यूक्लियस की अवधारणा पर विचार किया। प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे तत्काल संदर्भ हेतु उद्धृत हैं:

> *"13. प्रथमतः मुकदमे की संपत्तियों की प्रकृति पर विचार करें, अर्थात् स्वर्गीय गणपति मूपनार की स्व-अर्जित संपत्तियाँ या पैतृक संपत्तियाँ तथा क्या संपत्तियाँ खरीदने हेतु कोई न्यूक्लियस उपलब्ध था। हिंदू विधि के अधीन केवल तभी जब कोई व्यक्ति दावा करता हो कि संपत्ति पैतृक संपत्ति है तथा सिद्ध कर दे कि अन्य संपत्ति अधिग्रहण करने हेतु न्यूक्लियस उपलब्ध था, तब बोझ स्व-अर्जन का दावा करने वाले पक्ष पर स्थानांतरित हो जाता है कि संपत्ति पारिवारिक संपदा की सहायता के बिना अधिग्रहित की गई। दूसरे शब्दों में न्यूक्लियस का मात्र अस्तित्व चाहे कितना ही छोटा या तुच्छ हो पर्याप्त नहीं।*

---

12. एआइआर2004मद्रास529

*यह दिखाया जाना चाहिए कि वह ऐसी प्रकृति का हो जो संयुक्त पारिवारिक संपत्ति का भाग मानी जाने वाली संपत्ति के अधिग्रहण का उचित रूप से नेतृत्व कर सके। जब किसी व्यक्ति के विरुद्ध मिश्रण का सिद्धांत लागू किया जाता हो जिसके पास उसकी आय हो तथा संपत्ति अधिग्रहण की हो, तो उचित अनुमान यही बनता है कि उसके पास आय उसके पूर्ण नियंत्रण में थी जब तक विपरीत साक्ष्य न हो। यदि कोई सहदायिक यह स्थापित करना चाहता हो कि परिवार के किसी स्त्री सदस्य के नाम या प्रबंधक के नाम की संपत्ति को संयुक्त पारिवारिक न्यूक्लियस से अधिग्रहित माना जाए, तो उसके लिए पूर्णतः आवश्यक है कि वह न केवल ऐसा याचना करे अपितु ऐसे संयुक्त पारिवारिक निधि या न्यूक्लियस के अस्तित्व को सिद्ध भी करे। भले ही संयुक्त पारिवारिक न्यूक्लियस इस प्रकार स्थापित हो जाए, फिर भी प्रावधान कि प्रबंधक द्वारा की गई वृद्धि या उसके द्वारा की गई खरीद को ऐसे न्यूक्लियस से माना जाए, तब भी उत्पन्न नहीं होता यदि सिद्ध न हो कि संयुक्त परिवार का ऐसा न्यूक्लियस आय-उत्पादक यंत्र न हो। आवश्यक प्रमाण अत्यंत कठोर होता है तथा बोझ उस व्यक्ति पर होता है जो दावा करता हो कि परिवार के स्त्री सदस्य के नाम या प्रबंधक या किसी अन्य सहदायिक के नाम की संपत्ति को संयुक्त पारिवारिक संपत्ति माना जाए। ऐसी अधिग्रहण या खरीद की तिथि पर ऐसी अधिशेष आय या संयुक्त पारिवारिक न्यूक्लियस की उपलब्धता का प्रमाण होना चाहिए। अचल संपत्तियों पर बंधक पर उधार दिए गए धन के मामलों में भी यही सिद्धांत लागू होता है। अधिग्रहणकर्ता पर बोझ नहीं है कि उसके नाम दर्ज संपत्ति संयुक्त पारिवारिक निधियों से खरीदी गई थी, यह सिद्ध करे। ऐसा संयुक्त परिवार के प्रबंधक के मामले में हो सकता है, किंतु सभी सहदायिकों के मामले में नहीं। स्त्री सदस्यों के मामले में तो विशेष कारण से ऐसा नहीं।*

*14. स्व-अर्जित संपत्ति का संयुक्त पारिवारिक संपत्ति के साथ मिश्रण का सिद्धांत प्रत्येक मामले के तथ्यों के संदर्भ में सावधानीपूर्वक लागू किया जाना चाहिए। निस्संदेह यह सुस्थापित है कि जब संयुक्त परिवार के सदस्यों ने संयुक्त श्रम से या संयुक्त व्यापार से संपत्ति अधिग्रहित की हो, तो विपरीत इरादे का स्पष्ट संकेत न होने पर वह संपत्ति संयुक्त पारिवारिक संपत्ति के रूप में उनके स्वामित्व में होगी तथा उनके पुत्री पुत्र उनके जन्म के अधिकार से ऐसी संपत्ति में अधिकार प्राप्त कर लेंगे। किंतु आवश्यक शर्त*

*विपरीत इरादे का अभाव है। यदि अधिग्रहणकर्ता के इरादे का संतोषजनक साक्ष्य हो कि वह संपत्ति को अपना स्वयं का मानना चाहता है, न कि संयुक्त पारिवारिक संपत्ति के रूप में, तो हिंदुओं के व्यक्तिगत विधि के अनुसार सामान्यतः उत्पन्न होने वाला अनुमान कि ऐसी संपत्ति संयुक्त पारिवारिक संपत्ति मानी जाएगी, उत्पन्न नहीं होगा।*

*15. यह एक सुविख्यात विधिक सिद्धांत है कि जहाँ कोई पक्षकार दावा करता हो कि कोई विशेष संपत्ति संयुक्त पारिवारिक संपत्ति है, तो इसे सिद्ध करने का बोझ दावा करने वाले पक्ष पर होता है। जहाँ यह सिद्ध या स्वीकृत हो जाए कि परिवार के पास कोई संयुक्त संपत्ति थी जो अपनी प्रकृति एवं सापेक्ष मूल्य से प्रश्नगत संपत्ति अधिग्रहण करने वाले न्यूक्लियस का रूप ले सकती थी, तो अनुमान उत्पन्न होता है कि वह संयुक्त संपत्ति थी तथा बोझ स्व-अर्जन का दावा करने वाले पक्ष पर स्थानांतरित हो जाता है जो सकारात्मक रूप से सिद्ध करे कि संपत्ति संयुक्त परिवार की सहायता के बिना अधिग्रहित की गई। किंतु यदि न्यूक्लियस ऐसा हो जिसकी सहायता से संयुक्त मानी जाने वाली संपत्ति अधिग्रहित न हो सकी हो, तो ऐसा कोई अनुमान उत्पन्न नहीं होगा। अनुमान उत्पन्न करने के लिए न्यूक्लियस ऐसा होना चाहिए जिसकी सहायता से संयुक्त मानी जाने वाली संपत्ति अधिग्रहित हो सकी हो। सदस्यों के कब्जे में परिवार का मकान जो कोई आय न देता हो, न्यूक्लियस नहीं हो सकता जिससे अधिग्रहण किए जा सकें भले ही उसका मूल्य काफी हो।*

*16. हिंदू संयुक्त परिवार में, यदि कोई सदस्य विभाजन के लिए मुकदमा दायर करता हो इस आधार पर कि उसके द्वारा दावा की गई संपत्तियाँ संयुक्त पारिवारिक संपत्तियाँ हैं, तो सामान्यतः तीन परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। पहली स्वीकृत मामला है जब संयुक्त पारिवारिक संपत्तियों के अस्तित्व पर कोई विवाद ही न हो। दूसरा मामला वह है जहाँ कुछ संपत्तियाँ संयुक्त पारिवारिक संपत्तियाँ स्वीकार की गई हों तथा जिनमें हिस्सा दावा किया गया हो अन्य संपत्तियाँ संयुक्त पारिवारिक संपत्तियों से प्राप्त आय से वृद्धि या अधिग्रहण मानी जाती हों या वैकल्पिक रूप से ऐसी उपलब्ध संपत्तियों की बिक्री या रूपांतरण से अधिग्रहित। तीसरा शीर्षक यह है कि परिवार की स्त्री सदस्यों के नाम दर्ज संपत्तियाँ बेनामी हैं तथा प्रबंधक या परिवार के मुखिया द्वारा जानबूझकर ऐसी स्थिति बनाई गई है तथा वास्तव में स्त्री सदस्यों के नाम दर्ज संपत्तियाँ या राशियाँ संयुक्त*

*पारिवारिक संपत्तियाँ हैं। 'न्यूक्लियस' शब्द पर विचार करते समय हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि ऐसा न्यूक्लियस तथ्य के रूप में स्थापित होना चाहिए तथा संभावनाओं के आधार पर सामान्यतः इसके अस्तित्व का अनुमान या धारणा नहीं की जा सकती। संपत्ति का विस्तार, संपत्ति से आय, ऐसी आय पर लगने वाली सामान्य दायित्वता तथा ऐसी संयुक्त पारिवारिक संपत्ति का शुद्ध उपलब्ध अधिशेष सभी न्यूक्लियस के भंडार की सामग्री का आकलन करने के उद्देश्य से गणना में आते हैं जिसके आधार पर ही उचित निश्चय के साथ कहा जा सके कि अन्य संयुक्त पारिवारिक संपत्तियाँ खरीदी गईं जब तक उपलब्ध अधिशेष आय तथा कथित संयुक्त पारिवारिक संपत्तियों के बीच मजबूत संबंध या नेक्सस स्थापित न हो। जो व्यक्ति न्यायालय में ऐसी नंगी याचनाओं के साथ आता हो बिना पर्याप्त प्रमाण के समर्थन के उसे विफल होना चाहिए।*

*17. यह हिंदू विधि का एक सुविख्यात सिद्धांत भी है कि मूल रूप से स्व-अर्जित संपत्ति सहदायिक द्वारा स्वेच्छा से संयुक्त स्टॉक में डाल देने पर यदि उसके ऊपर सभी अलग दावों को त्यागने का इरादा हो तो संयुक्त संपत्ति बन सकती है। किंतु प्रश्न कि क्या सहदायिक ने ऐसा किया या नहीं पूरी तरह से मामले की समस्त परिस्थितियों के प्रकाश में तय होने वाला तथ्यात्मक प्रश्न है। स्थापित होना चाहिए कि सहदायिक के पास अपने अलग अधिकारों को त्यागने का स्पष्ट इरादा था तथा ऐसा इरादा दया या स्नेह से किए गए कार्यों से अनुमानित नहीं होगा। महत्वपूर्ण बिंदु ध्यान रखना यह है कि हिंदू सहदायिक की अलग संपत्ति उसके संयुक्त पारिवारिक या पैतृक संपत्ति के साथ मात्र शारीरिक मिश्रण से नहीं अपितु अपनी स्वेच्छा एवं इरादे से उसके ऊपर अपने विशेष अधिकार को त्यागने या समर्पित करने से अपनी अलग संपत्ति का स्वरूप त्यागकर संयुक्त पारिवारिक या पैतृक संपत्ति के गुण धारण कर लेती है। ऐसा इरादा उसके शब्दों या उसके कार्यों एवं आचरण से ही खोजा जा सकता है।*

14. यह भी उल्लेखनीय है कि हिंदू विधि में, किसी संपत्ति को पैतृक संपत्ति माने जाने के लिए उसे पितृपुरुषों में से किसी से तीन पीढ़ियों तक उत्तराधिकार में प्राप्त होना चाहिए। इस संबंध में, इस न्यायालय के *गोविंदभाई छोटाभाई पटेल एवं अन्य बनाम पटेल रामणभाई माथुरभाई13*

---

13. (2020) 16 एससीसी255

के निर्णय का उल्लेख उचित होगा, जिसमें निम्नलिखित रूप में कहा गया है:

*"18. अपीलीय पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता ने श्याम नारायण प्रसाद [श्याम नारायण प्रसाद बनाम कृष्णा प्रसाद, (2018) 7 एससीसी 646 : (2018) 3 एससीसी (सिविल) 702] का उल्लेख किया है। वह एक मामला है जिसमें प्रश्नगत संपत्ति को ट्रायल कोर्ट ने पैतृक संपत्ति माना। वहाँ के वादी गोपाल प्रसाद के पुत्रों में से एक के पुत्र एवं पौत्र होने के कारण अंतिम पुरुष धारक को संपत्ति में समान हिस्सा पाया गया। परीक्षित प्रश्न यह था कि क्या गोपाल प्रसाद के पुत्रों में से एक को विभाजन में आवंटित संपत्ति सहदायिक संपत्ति का स्वरूप बनाए रखती है। इस न्यायालय ने उक्त निष्कर्ष की पुष्टि की। इस न्यायालय ने निम्नलिखित रूप में कहा: (एससीसी पृष्ठ 651, पैरा 12)*

*12. यह सुस्थापित है कि कोई पुरुष हिंदू द्वारा अपने पिता, पिता के पिता या पिता के पिता के पिता से उत्तराधिकार प्राप्त संपत्ति पैतृक संपत्ति होती है। मिताक्षरा विधि के अनुसार पैतृक संपत्ति का मूलभूत लक्षण यह है कि इसे उत्तराधिकार प्राप्त करने वाले व्यक्ति के पुत्र, पौत्र तथा प्रपौत्र उसके जन्म के क्षण से ही उसमें हित एवं संलग्न अधिकार प्राप्त कर लेते हैं। सहदायिक को पैतृक संपत्ति के विभाजन पर प्राप्त होने वाला हिस्सा उसके पुत्री पुत्रों के संबंध में पैतृक संपत्ति होता है। विभाजन के बाद, पुत्र के हाथों में संपत्ति पैतृक संपत्ति बनी रहती है तथा उस पुत्र का प्राकृतिक या दत्तक पुत्र उसमें हित प्राप्त करता है तथा उत्तरजीविता द्वारा इसके हकदार होता है।"*

*.... ..... .....*

*20. इस निर्विवाद तथ्य के प्रकाश में कि अशाभाई पटेल ने संपत्ति खरीदी थी, इसलिए वह किसी भी व्यक्ति के पक्ष में वसीयत करने के योग्य था। चूंकि वसीयत का लाभार्थी उसका पुत्र था तथा वसीयत में किसी इरादे के अभाव में लाभार्थी सी.एन. अरुणाचला मूडलियार मामले [सी.एन. अरुणाचला मूडलियार बनाम सी.ए. मुरुगनाथा मूडलियार, (1953) 2 एससीसी 362 : 1954 एससीआर 243 : एआइआर 1953 एससी 495] के अनुसार संपत्ति को स्व-अर्जित संपत्ति के रूप में प्राप्त करेगा। संपत्ति के पैतृक होने का*

*प्रमाण बोझ केवल वादियों पर था। उनके लिए सिद्ध करना था कि अशाभाई की वसीयत का इरादा संपत्ति को परिवार के लाभ के लिए हस्तांतरित करने का था ताकि उसे पैतृक संपत्ति माना जाए। किसी ऐसी याचना या प्रमाण के अभाव में दानकर्ता के हाथों में संपत्ति को स्व-अर्जित संपत्ति माना जाना होगा। एक बार दानकर्ता के हाथों में संपत्ति स्व-अर्जित मानी जाए तो वह अपनी संपत्ति को उचित समझे अनुसार निपटाने के योग्य था जिसमें परिवार के किसी अपरिचित के पक्ष में उपहार पत्र निष्पादित करना शामिल है।*

15. सहदायिक संपत्ति के संबंध में, रोहित चौहान बनाम सुरिंदर सिंह एवं अन्य14 के मामले में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत निम्नलिखित रूप से प्रासंगिक होगा:

*"11. .... हमारे मत में सहदायिक संपत्ति का अर्थ पैतृक संपत्ति से युक्त संपत्ति है तथा सहदायिक का अर्थ सामान्य पूर्वज की संपदा में अन्यों के साथ समान रूप से हिस्सा लेने वाले व्यक्ति से है। सहदायिक संयुक्त हिंदू परिवार से संकुचित निकाय है तथा हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005 के प्रारंभ से पूर्व केवल परिवार के पुरुष सदस्य ही जन्म से सहदायिक संपत्ति में हित प्राप्त करते थे। सहदायिक को सहदायिक संपत्ति में निश्चित हिस्सा नहीं होता अपितु उसका इसमें अविभाजित हित होता है तथा ध्यान रखना चाहिए कि परिवार में मृत्यु से यह बढ़ता है तथा जन्म से घटता है। यह स्थिर नहीं है। हम आगे यह भी मानते हैं कि जब तक विभाजन पर पैतृक संपत्ति एक व्यक्ति के हाथ में रहे, तब तक इसे अलग संपत्ति माना जाएगा तथा ऐसा व्यक्ति सहदायिक संपत्ति को अपनी अलग संपत्ति मानकर निपटाने का हकदार होगा किंतु यदि उसके बाद पुत्र का जन्म हो तो जन्म से पूर्व किया हस्तांतरण प्रश्नगत नहीं किया जा सकेगा। किंतु, क्षण भर पुत्र के जन्म होते ही संपत्ति सहदायिक संपत्ति बन जाती है तथा पुत्र उसमें हित प्राप्त कर सहदायिक बन जाता है।*

*12. हमारा लिया गया दृष्टिकोण इस न्यायालय के एम. योगेंद्र बनाम लीलाम्मा एन. [(2009) 15 एससीसी 184 : (2009) 5 एससीसी (सिविल) 602] के निर्णय से समर्थन प्राप्त करता है जिसमें निम्नलिखित रूप में कहा गया है: (एससीसी पृष्ठ 192, पैरा 29)*

---

14. (2013) 9 एससीसी419

*29. अब अनेक निर्णयों के दृष्टिकोण से यह सुस्थापित है कि विभाजन में एकमात्र सहदायिक को आवंटित संपत्ति उसके हाथों में उसकी अलग संपत्ति होगी क्योंकि वह तभी पुनर्जीवित होगी जब उसके पुत्र का जन्म हो। यह कहना एक बात है कि संपत्ति सहदायिक संपत्ति बनी रहती है किंतु यह कहना दूसरी बात है कि वह पुनर्जीवित हो जाती है। दोनों में अंतर पूर्णतः स्पष्ट एवं निर्विवाद है। पूर्व मामले में एकमात्र उत्तरजीवी सहदायिक द्वारा किया गया कोई भी विक्रय या हस्तांतरण वैध होगा जबकि सहदायिक के मामले में कर्ता द्वारा किया गया हस्तांतरण वैध होगा।"*

*... ..... .... ....*

*14. कोई व्यक्ति, जो वर्तमान में एकमात्र उत्तरजीवी सहदायिक हो, जैसा इस मामले में गुलाब सिंह वादी के जन्म से पूर्व था, सहदायिक संपत्ति को अपनी अलग संपत्ति की भाँति निपटाने का हकदार था। गुलाब सिंह, वादी रोहित चौहान के जन्म तक, संपत्ति को अपनी संपत्ति की भाँति बेचने, बंधक करने तथा जैसा चाहे वैसा करने के योग्य था। यदि उसने वादी रोहित चौहान के जन्म या गर्भ में आने से पूर्व ऐसा किया होता तो वह अपने पिता द्वारा किए गए हस्तांतरण पर आपत्ति करने के अयोग्य होता। किंतु, वर्तमान मामले में, यह स्वीकृत स्थिति है कि आरोपी संख्या 2 को विभाजन पर प्राप्त संपत्ति पैतृक संपत्ति थी तथा वादी के जन्म तक वह एकमात्र उत्तरजीवी सहदायिक था किंतु वादी के जन्म होते ही उसे पिता की संपत्ति में हिस्सा प्राप्त हो गया तथा वह सहदायिक बन गया। जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया गया, सुस्थापित विधिक स्थिति के दृष्टिकोण से, आरोपी संख्या 2 के हाथों विभाजन में आवंटित संपत्ति वादी के जन्म तक अलग संपत्ति थी तथा इसलिए उसके जन्म के बाद आरोपी संख्या 2 विधिक आवश्यकता हेतु कर्ता के रूप में ही संपत्ति का हस्तांतरण कर सकता था। किसी का भी मामला नहीं है कि आरोपी संख्या 2 ने विक्रय पत्र तथा रिलीज पत्र विधिक आवश्यकता हेतु कर्ता के रूप में निष्पादित किए। अतः, गुलाब सिंह द्वारा निष्पादित विक्रय पत्र तथा रिलीज पत्र समस्त सहदायिक संपत्ति अवैध, शून्य तथा अमान्य हैं। हालांकि, विक्रय पत्र तथा रिलीज पत्र निष्पादन के समय गुलाब सिंह के हिस्से में पड़ने वाली संपत्ति के संबंध में पक्षकार उचित कार्यवाही में अपने उपचार कार्य कर सकते हैं।*

16. वर्तमान मामले में, वादियों ने समस्त कार्यवाहियों के दौरान एक विशिष्ट याचना उठाई कि मुकदमे की संपत्ति आरोपी संख्या 1 द्वारा पारिवारिक न्यूक्लियस का उपयोग करके खरीदी गई अर्थात् आरोपी संख्या 1 के हिस्से में आवंटित भूमि से प्राप्त आय; कुली कार्य करने से प्राप्त आय; विभाजन के समय प्राप्त 10,000/- रुपये नगद; तथा रेयादुर्गा में अपनी संपत्ति बेचने वाली मल्लम्मा (प्रतिवादियों की दादी) से प्राप्त नगद धनराशि; इसलिए मुकदमे की संपत्ति को पैतृक माना जाना चाहिए तथा सहदायिक रहे वादी उसमें अधिकार रखते हैं।

17. यह विवादास्पद नहीं हो सकता कि 09.05.1986 की विभाजन पत्र द्वारा आरोपी संख्या 1 तथा उसके भाइयों में विभाजित संपत्तियाँ संयुक्त पारिवारिक संपत्तियाँ हैं। हालांकि, हिंदू विधि के अनुसार, विभाजन के बाद प्रत्येक पक्षकार को अलग एवं विशिष्ट हिस्सा प्राप्त होता है तथा यह हिस्सा उनकी स्व-अर्जित संपत्ति बन जाता है तथा उनके पास उसके ऊपर निरपेक्ष अधिकार होते हैं तथा वे इसे जैसा चाहें बेच, हस्तांतरित या वसीयत कर सकते हैं। तदनुसार, विभाजन द्वारा वसीयत की गई संपत्तियाँ संबंधित हिस्सेदारों की स्व-अर्जित संपत्तियाँ बन जाती हैं।

18. प्रतीततः वादियों ने भाइयों के बीच की गई विभाजन पत्र (एक्स. पी1) पर प्रश्न नहीं उठाया। इसमें कहा गया है कि संबंधित पक्षकार अपने हिस्से में आवंटित संपत्तियों का भविष्य में विक्रय, पट्टा, उपहार, बंधक आदि के अधिकार से उपभोग करेंगे। विभाजन पत्र आगे प्रकट करता है कि मुकदमे की संपत्ति आरोपी संख्या 1 के भाइयों में से सी. थिप्पेश्वामी को आवंटित की गई थी; तथा आरोपी संख्या 1 को 10 एकड़ भूमि आवंटित की गई, जो मुकदमे की संपत्ति से भिन्न थी जो 7 एकड़ 20 गुंटा सी. थिप्पेश्वामी को आवंटित थी। इसमें आगे कहा गया है कि पिता चन्नप्पा की मृत्यु के बाद सदस्यों में मतभेद के कारण संयुक्त परिवार असम्भालनीय हो गया था इसलिए उन्होंने साथ रहना अच्छा न मानते हुए अपने आवंटित भूमियों का विभाजन कर लिया। इस प्रकार, पक्षकारों का इरादा तथा विभाजन पत्र के उल्लेख स्थापित करते हैं कि पक्षकार अलग-अलग रास्ते पर जाना चाहते थे तथा संपत्ति को संयुक्त पारिवारिक संपत्ति बनाए रखना नहीं चाहते थे।

19. जैसा कि ऊपर पुनः प्रतिपादित किया गया है, विधि के अनुसार संयुक्त पारिवारिक संपत्ति का विधिवत वितरण हो जाने के पश्चात वह संयुक्त पारिवारिक संपत्ति नहीं रह जाती और संबंधित पक्षकारों के हिस्से उनकी स्व-अर्जित संपत्तियाँ बन जाती हैं। अतः प्रतिवादी क्रमांक 1 द्वारा अपने भाई थिप्पेश्वामी से दिनांक 16.10.1989 के विक्रय विलेख के माध्यम से अधिग्रहित वाद संपत्ति उसकी स्व-अर्जित संपत्ति

बन गई। वादियों का तर्क है कि वाद संपत्ति प्रतिवादी क्रमांक 1 द्वारा संयुक्त परिवार के न्यूक्लियस का उपयोग करके खरीदी गई थी और इसलिए उसे पैतृक संपत्ति माना जाना चाहिए। इसके विपरीत, प्रतिवादियों की यह दलील है कि प्रतिवादी क्रमांक 1 ने वाद संपत्ति अपनी स्वयं की निधियों तथा डीडब्ल्यू-3 नरसिम्हमूर्ति से प्राप्त ऋण की सहायता से अर्जित की। डीडब्ल्यू-1 चंद्रशेखर ने अपने बयान में स्पष्ट रूप से कहा कि प्रतिवादी क्रमांक 1 ने डीडब्ल्यू-3 से ऋण प्राप्त किया, जिससे उसने वाद संपत्ति खरीदी, तथा उक्त ऋण राशि का भुगतान डीडब्ल्यू-3 के पक्ष में 4 एकड़ भूमि का विक्रय विलेख निष्पादित कर किया और शेष राशि से अपनी पुत्री का विवाह संपन्न किया। डीडब्ल्यू-1 ने यह भी कहा कि वाद संपत्ति के अतिरिक्त प्रतिवादी क्रमांक 1 के पास अन्य भूमियाँ एवं एक आवासीय मकान भी था। डीडब्ल्यू-2 लक्ष्मणप्पा ने अपने साक्ष्य में कहा कि उसने वर्ष 1986 में प्रतिवादी क्रमांक 1 एवं उसके भाइयों के मध्य निष्पादित विभाजन विलेख (प्रद. पी-1) पर हस्ताक्षर किए थे तथा प्रतिवादी क्रमांक 1 के हिस्से में ₹10,000/- के भुगतान से इंकार किया। उसने आगे कहा कि प्रतिवादी क्रमांक 1 के बड़े भाई थिप्पेश्वामी, जो बेंगलुरु में रहते थे, अपनी हिस्सेदारी की देखरेख करने में असमर्थ होने के कारण उसे प्रतिवादी क्रमांक 1 को बेच दिया। उसका साक्ष्य यह भी स्थापित करता है कि प्रतिवादी क्रमांक 1 ने डीडब्ल्यू-3 से ऋण प्राप्त किया तथा वर्ष 1993 में विक्रय विलेख (प्रद. डी-1) निष्पादित कर उक्त ऋण का भुगतान किया, जिसमें डीडब्ल्यू-2 साक्षी था; तथा उस समय प्रतिवादी क्रमांक 1 की पत्नी एवं बच्चे उपस्थित थे। डीडब्ल्यू-3 नरसिम्हमूर्ति ने अपने साक्ष्य में कहा कि प्रतिवादी क्रमांक 1 ने अक्टूबर 1989 में अपने भाई की भूमि खरीदने हेतु उससे ऋण प्राप्त किया तथा वर्ष 1993 में 4 एकड़ भूमि उसे विक्रय कर ऋण चुकाया। उसने यह भी कहा कि डीडब्ल्यू-3 के पक्ष में विक्रय विलेख के निष्पादन के समय प्रतिवादी क्रमांक 1 की पत्नी एवं बच्चे उपस्थित थे। डीडब्ल्यू-4 लिंगन्ना ने अपने साक्ष्य में कहा कि प्रतिवादी क्रमांक 1 ने ऋण की अदायगी हेतु डीडब्ल्यू-3 के पक्ष में 4 एकड़ भूमि का विक्रय विलेख निष्पादित किया, जिसमें वह साक्षी था। उसने स्पष्ट रूप से यह भी कहा कि प्रतिवादी क्रमांक 1 ने डीडब्ल्यू-3 से ऋण प्राप्त कर, डीडब्ल्यू-3 के पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित करने से पूर्व, लगभग 7 एकड़ भूमि खरीदी थी। दिनांक 11.03.1993 के विक्रय विलेख में स्पष्ट रूप से यह उल्लेख है कि वाद संपत्ति प्रतिवादी क्रमांक 1 की स्व-अर्जित संपत्ति थी। विक्रय विलेख (प्रद. पी-2) में कहीं भी यह उल्लेख नहीं है कि प्रतिवादी क्रमांक 1 द्वारा खरीदी गई वाद संपत्ति पैतृक संपत्ति थी अथवा संयुक्त पारिवारिक संपत्ति से प्राप्त आय से खरीदी गई थी, सिवाय विभाजन

विलेख (प्रद. पी-1) के एक मात्र संदर्भ के, जो हमारे विचार में यह निष्कर्ष निकालने के लिए पर्याप्त नहीं है कि प्रतिवादी क्रमांक 1 के हिस्से में आवंटित संपत्तियाँ भी संयुक्त पारिवारिक संपत्तियाँ थीं। वादियों द्वारा यह सिद्ध करने हेतु कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया कि प्रतिवादी क्रमांक 1 के हिस्से में आई अन्य संपत्तियों से आय प्राप्त होती थी और उसी आय से वाद संपत्ति खरीदी गई थी। इस संबंध में कोई अभिलेख प्रस्तुत नहीं किए गए। यद्यपि पीडब्ल्यू-2 ने कहा कि विभाजन के समय तीनों भाइयों को ₹10,000/- प्रत्येक आवंटित किए गए थे, किंतु विभाजन विलेख (प्रद. पी-1) में इसका कोई उल्लेख नहीं है; अतः इस कथन पर विश्वास नहीं किया जा सकता। यह स्थापित विधि है कि किसी दस्तावेज की सामग्री उसके विपरीत मौखिक साक्ष्य पर प्रधानता रखती है। जहाँ तक मल्लम्मा द्वारा अपनी संपत्ति विक्रय कर प्रतिवादी क्रमांक 1 को वाद संपत्ति खरीदने में सहायता देने का प्रश्न है, पीडब्ल्यू-2 के कथन के अतिरिक्त इस संबंध में कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। इसके अतिरिक्त, न तो मल्लम्मा का परीक्षण किया गया और न ही उसके द्वारा निष्पादित कोई विक्रय विलेख प्रस्तुत किया गया। प्रतिवादियों के साक्ष्यों से यह भी स्पष्ट है कि प्रतिवादी क्रमांक 1 की कोई बुरी आदतें नहीं थीं तथा विक्रय विलेख के निष्पादन के समय उसकी पत्नी एवं बच्चे उपस्थित थे। इसके विपरीत, वाद संपत्ति को पैतृक संपत्ति सिद्ध करने के संबंध में पीडब्ल्यू-1 एवं पीडब्ल्यू-2 के बयानों में असंगतियाँ पाई गईं। केवल संयुक्त हिंदू परिवार में पुत्र-पुत्रियों का अस्तित्व मात्र, पिता की पृथक अथवा स्व-अर्जित संपत्ति को संयुक्त पारिवारिक संपत्ति नहीं बनाता। प्रतिवादियों का यह भी दावा है कि प्रतिवादी क्रमांक 1 ने विक्रय प्रतिफल से प्राप्त राशि से अपनी पुत्री का विवाह संपन्न किया, जो हमारे अनुसार कर्ता का दायित्व है और इसलिए उसे आवश्यकता एवं कर्तव्य का कार्य माना जाएगा। इस तथ्य पर वादियों द्वारा कोई आपत्ति नहीं की गई।

19.1 यहाँ यह भी उल्लेख किया जाना चाहिए कि जब संयुक्त पारिवारिक संपत्ति से प्राप्त आय या संयुक्त पारिवारिक संपत्ति बेची जाती है तथा विक्रय प्रतिफल संयुक्त परिवार के भरण-पोषण एवं शिक्षा हेतु उपयोग किया जाता है, तो इन्हें आवश्यकता से प्रेरित माना जाएगा क्योंकि प्रत्येक कर्ता का यह कर्तव्य है। अतः, यदि कर्ता ने संपत्ति बेची हो तथा निधि बच्चों के पालन-पोषण हेतु उपयोग की हो तो विधिक आवश्यकता संतुष्ट करने के लिए पर्याप्त है। इसके अतिरिक्त, इस देश में प्रचलित रीति-रिवाजों एवं

परंपराओं के अनुसार पिता ही अपने बच्चों का विवाह करता है तथा इसलिए उस उद्देश्य हेतु हुए व्यय को भी आवश्यकता से प्रेरित व्यय माना जाएगा।

19.2 पुनरावृत्ति की कीमत पर यह स्पष्ट किया जाता है कि विवादित संपत्ति वह है, जिसे प्रतिवादी संख्या 1 ने अपने भाई सी. थिप्पेश्वामी से क्रय किया था। उच्च न्यायालय ने इस तथ्य की जांच करने के बजाय कि उक्त संपत्ति किस प्रकार अर्जित की गई थी, द्वितीय अपील में त्रुटिवश तथ्यात्मक जांच करते हुए उस संपत्ति के संबंध में विचार किया, जो प्रतिवादी संख्या 1 को वसीयत के अधीन प्राप्त हुई थी, जिसका उल्लेख मात्र विभाजन विलेख की प्रस्तावना में पाया जाता है। उच्च न्यायालय यह भी ध्यान में रखने में असफल रहा कि विभाजन वर्ष 1986 में हुआ था, जबकि वाद संपत्ति का क्रय वर्ष 1989 में किया गया था। हमारे विचार में, इस प्रकार का विचलन न्याय के दुरुपयोग में और अधिक योगदान देता है। इसके अतिरिक्त, उच्च न्यायालय को वादियों द्वारा प्रतिवादी संख्या 1 के विरुद्ध लगाए गए उन असिद्ध आरोपों पर निर्भर नहीं होना चाहिए था, जिनमें यह दावा किया गया था कि उसने एक अन्य संपत्ति का अंतरण किया था, और उसी आधार पर यह अनुमान लगा लिया गया कि वाद संपत्ति भी समान परिस्थितियों में बेची गई थी। वस्तुतः, उक्त विक्रयों को वादियों द्वारा कभी चुनौती ही नहीं दी गई थी। अतः, प्रकरण के तथ्यों एवं परिस्थितियों तथा उपर्युक्त निर्णयों में प्रतिपादित सिद्धांतों को दृष्टिगत रखते हुए, हमारे सुविचारित मत में प्रतिवादी संख्या 1 ने वाद संपत्ति डीडब्ल्यू-3 से प्राप्त ऋण की सहायता से अर्जित की थी, न कि पारिवारिक न्यूक्लियस अथवा संयुक्त पारिवारिक निधियों से प्राप्त आय से। इसलिए, वाद संपत्ति को उसकी स्व-अर्जित संपत्ति माना जाना चाहिए। परिणामस्वरूप, प्रतिवादी संख्या 1 को वाद संपत्ति का विक्रय करने का पूर्ण अधिकार था और उसके द्वारा प्रतिवादी संख्या 2 के पक्ष में निष्पादित विक्रय विलेख पूर्णतः वैध है। इसके अतिरिक्त, अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य यह भी दर्शाते हैं कि वाद संपत्ति का विक्रय परिवार के लाभ एवं हित में किया गया था; अतः इस पहलू पर भी हम उच्च न्यायालय के निष्कर्षों से सहमत नहीं हैं।

20. स्व-अर्जित संपत्ति का संयुक्त परिवार के साथ मिश्रण (ब्लेंडिंग) के सिद्धांत के संबंध में, यह सुस्थापित विधि है कि संयुक्त हिंदू परिवार के सदस्य की अलग या स्व-अर्जित संपत्ति उसकी स्वेच्छा से सामान्य स्टॉक में डालकर उसके अलग दावे को त्यागने के इरादे से संयुक्त

पारिवारिक संपत्ति का स्वरूप धारण कर सकती है किंतु ऐसे त्याग को स्थापित करने हेतु अलग अधिकारों को माफ करने का स्पष्ट इरादा सिद्ध होना चाहिए। मात्र इस तथ्य से कि परिवार के अन्य सदस्यों को संपत्ति का संयुक्त उपयोग करने की अनुमति दी गई, या अलग संपत्ति की आय उदारता से उन व्यक्तियों के समर्थन हेतु उपयोग की गई जिन्हें धारक बाध्य था या नहीं था उनका समर्थन करने हेतु, या अलग खाते न रखने से त्याग का अनुमान नहीं किया जा सकता, क्योंकि उदारता या दया का कार्य सामान्यतः विधिक दायित्व को स्वीकार माना नहीं जाएगा [देखें: लक्की रेड्डी चिन्ना वेंकट रेड्डी एवं अन्य बनाम लक्की रेड्डी लक्ष्मम्मा15 तथा के.वी. नारायणन बनाम के.वी. रंगनाधन एवं अन्य16]। वर्तमान मामले में यह प्रश्न उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि सी. थिप्पेश्वामी से प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा खरीदी मुकदमे की संपत्ति वसीयत द्वारा प्रतिवादी संख्या 1 को प्राप्त कही जाने वाली संपत्ति से भिन्न है जिसे कथित रूप से संयुक्त पारिवारिक संपत्ति के साथ मिश्रित किया गया। वादियों ने वसीयत द्वारा प्राप्त संपत्ति के संयुक्त पारिवारिक संपत्तियों के साथ मिश्रण तथा उस संपत्ति से प्राप्त आय के उपयोग से मुकदमे की संपत्ति खरीदी जाने का कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया। उच्च न्यायालय ने इस पहलू पर भी कोई निष्कर्ष नहीं दिया। दूसरी ओर, जैसा ऊपर कहा गया, हम अभिलेख पर साक्ष्य से संतुष्ट हैं कि मुकदमे की संपत्ति स्व-अर्जित संपत्ति है। हालांकि, उच्च न्यायालय ने वर्तमान मामले पर लागू न होने वाले निर्णयों पर भरोसा कर हिंदू संयुक्त परिवार विधि के अधीन ब्लेंडिंग सिद्धांत को गलती से लागू किया, किसी पर्याप्त विधिक प्रश्न को तैयार किए बिना साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन किया तथा वादियों द्वारा दायर अपील को स्वीकार कर लिया। हमारे अनुसार, यह उपर्युक्त कारणों से टिकाऊ नहीं है।

21. उपरोक्त चर्चा के दृष्टिगत, उच्च न्यायालय का आवेदनीय निर्णय एवं आदेश रद्द किया जाता है, तथा प्रथम अपीलीय न्यायालय का निर्णय एवं डिक्री बहाल की जाती है। तदनुसार, यह अपील स्वीकार की जाती है। पक्षकार अपने-अपने खर्च वहन करेंगे।

22. संबद्ध विविध आवेदन (आवेदनगण), यदि कोई हों, निस्तारित माने जाएँगे।

*मामले का परिणाम: अपील स्वीकार की जाती है।*

*† हेडनोट्स द्वारा: अंकित ज्ञान*

15. [1964]2एससीआर172
16. (1977)1एससीसी244

यह अनुवाद पियूष आनंद, पैनल अनुवादक द्वारा किया गया है|